चतुर्विध आनन्दनिर्झर
(सुखी होने के चार उपाय)
स्वामी श्री गिरीशानन्दजी

सम्पादकीय

श्रीमद् भगवद् गीता पर एक सप्ताह की गोष्ठी का आयोजन परम पूज्य स्वामी दयानन्दजी के आश्रम में सन् 1988 के ग्रीष्म में किया गया था। यह आश्रम पुरानी झाड़ी, ऋषिकेश में स्थापित है।

परम पूज्य स्वामी गिरीशानन्दजी से गीता के बारहवें अध्याय के चार श्लोक में वर्णित चतुर्विध आनन्दनिर्झर, सुखी होने के चार उपाय पर अपने भाव प्रकट करने का निवेदन किया गया था। इनके प्रवचन में श्रीमद् भागवत् एवं अपने अन्य शास्त्रों का सार है। पाठक इसे पढ़कर उपनिषदों के सनातन सारगर्भित ज्ञान से लाभान्वित होंगे।

श्री रवीन झुनझुनवाला एवं श्रीमती शीला झुनझुनवाला द्वारा यह पुस्तक श्री रामेश्वर महादेव मंदिर, साकेत धाम आश्रम, जबलपुर के प्रथम वार्षिक उत्सव के उपलक्ष्य में निवेदित है। पुस्तक का मुद्रण श्रीमती शीला झुनझुनवाला द्वारा, अनुवाद श्रीमती पूर्णिमा तुलसीदास द्वारा एवं टंकण श्री पंकज राय द्वारा किया गया है।

यह पुस्तक हमारे उन प्रभु को समर्पित है जो हम सबके अंदर है, एवं पूज्य गुरुओं के रूप में अवतरित हो हमारे अज्ञान को दूर कर हमारे जीवन को आनन्दमय बनाते हैं।

ट्रस्टी
श्री राजीव लोचनम् ट्रस्ट
साकेत धाम, ग्वारी घाट
दरोगा घाट
जबलपुर

।। श्री रामः शरणं मम।।

चतुर्विध आनन्दनिर्झर

(सुखी होने के चार उपाय)

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदम्
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्।।

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्
सूत्रभाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्ति भेदविभागिने
व्योमवत् व्याप्त देहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः।।

आप लोगों को स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी ने जो परिचय दिया, और तो कुछ विशेष अपने में तो नहीं दिखता लेकिन एक बात जरूर मैं स्वामीजी की बात से सहमत हूँ कि गुरुओं की कृपा का अनुभव होता है।

एकबार वृन्दावन में एक प्रश्न उठा था कि गोपियाँ बार बार बाँसुरी से ईर्ष्या करती हैं कि इतना साधन भजन करने के बाद भी श्यामसुन्दर हमको नहीं अपनाते और इस बाँसुरी को चौबीस घंटा साथ में रखते हैं। वेणु गीत में वो श्लोक भी है-

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुः
(भा० १०.२१.९)

इस वेणु ने कौन सी ऐसी साधना की है जो कि श्यामसुन्दर का नित्य सानिध्य प्राप्त करके रह रही है? तो बहुत बड़े-बड़े विद्वानों की सभा थी, उसमें एक बहुत अच्छे सन्त थे - समाधान तो अनेक हैं भागवत् में भी और ग्रन्थों में भी - उन्होंने बड़ी अच्छी बात कही। क्योंकि गुरु के लिए इसलिए कहा गया है कि श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ। केवल शास्त्र पढ़ा है और अनुभव नहीं है तो बिल्कुल युक्तियुक्त समाधान नहीं कर सकता। तो सन्त थे, उनके जीवन में भी श्रीकृष्ण साधना थी और ग्रन्थों का अध्ययन भी था, तो उन्होंने कहा कि - ''मुझको जो लगता है कि बाँसुरी की क्या विशेषता है जो ये सौभाग्य प्राप्त हुआ'', तो उन्होंने कहा कि - ''मुझको लगता है कि बाँसुरी में अपनी कोई विशेषता बची ही नहीं, यही सबसे बड़ी उसकी विशेषता है।'' बड़ा सुन्दर लगा मुझको सुनकर के। वो बाँसुरी आप जानते हैं, अन्दर से बिल्कुल खाली होती है, कुछ नहीं होता अन्दर, बिल्कुल पोली होती है। अगर भरा होगा तो बजेगी ही नहीं। तो सन्त ने कहा कि - ''श्रीकृष्ण का स्वर उसी के अन्दर से निकलेगा जिसका हृदय बिल्कुल खाली होगा संसार से। दूसरे के हृदय में जो भरा हुआ है बहुत सारा, वहाँ कहाँ श्रीकृष्ण का स्वर सुनाई देगा? कहाँ उनका स्वर निकलेगा?

हमारे श्रीमहाराजजी कहते थे कि - " हमारा हृदय तो एक चौराहा बना हुआ है, बहुत सारे लोग दिनभर में आते हैं, जाते हैं। दोस्त-दुश्मन, राग-द्वेष की जितनी वस्तु व्यक्ति हैं, आते, जाते हैं और हम सोचते हैं उसी में हमको भगवान का स्वर भी सुनाई दे।" चौराहे में रहकर के आप आज का संगीत भी नहीं सुन सकते हैं, तो भगवान का स्वर चोराहे में कैसे सुनाई देगा?

हमारे गुरुजी कहते थे कि आपको किसी मेहमान को बुलाना होता है तो एक कमरा उसके लिए अलग रखते हैं, उसका सामान दूसरे कमरे में रख देते हैं, तैयार करके रखते हैं, और इतने बड़े सारे संसार के जो मुख्य अतिथि भगवान, उनको हमको अपने हृदय में बुलाना है और हृदय में इतना सारा सामान जमा करके रखे हैं, कैसे आयेंगे? एक अतिथि हमारे घर में नहीं रहना स्वीकार करता यदि हम उसको गन्दे कमरे में ठहरावें, सामान भरा रहे, तो वो बहुत संकोच से भले एक रात रुक जाए, अगले दिन बोलेगा - " आज चलना है। "

तो मैं कहने जा रहा था कि स्वामीजी ने कहा अध्ययन इत्यादि, तो ये सच्ची बात है, अध्ययन मैंने किया जरूर लेकिन कुछ भगवान की ऐसी कृपा रही कि भगवान ने अनुभव करा दिया कि पुरुषार्थ से व्यक्ति को कितना प्राप्त हो सकता है और गुरु और ईश्वर की कृपा से कितना मिल सकता है? अध्ययन मैंने किया जितना महाराजश्रीजी ने बताया, आठ वर्ष तक अध्ययन किया संस्कृत का। लेकिन उसके बाद स्वामीजी को मालूम है, दो वर्ष तक मैं इतना बीमार हुआ, वो सारा विस्मृत जैसे हो गया। माने उठाकर कर के देखें तो स्मरण आ जाता था, लेकिन वैसे जैसे पंक्ति की पंक्ति याद थी, पढ़ता था, सबकुछ करता था, वो सब भूल गया। तो अध्ययन से कितना मिला और इन दो साल में जो फिर संतों की कृपा हुई, उनका सत्संग हुआ, ईश्वर के रास्ते में जो बढ़ा उससे क्या मिला, तो मुझको ये अनुभव करा दिया ठाकुरजी ने कि अपने परिश्रम से, पुरुषार्थ से व्यक्ति कितना कर सकता है और ईश्वर और गुरु कि कृपा से कितना मिल सकता है, उसकी कोई सीमा नहीं। तो अध्ययन इत्यादि जो है वो तो एक निमित्त है, एक बात जरूर है कि जहाँ भी, कहीं भी, किसी भी हालत में गुरु और ईश्वर - कहने को दो हैं, वास्तव में तो एक ही हैं - उनकी कृपा का अनुभव होता रहता है।

अब विचार करें हमलोग अपने जीवन के विषय में। हम लोगों का ये जो सत्र है, सत्संग है या कोई भी कथा प्रवचन है, धार्मिक आयोजन है, उसका उद्देश्य होता है हम सच्चे सुख और आनन्द का अनुभव कर सकें, संसार की समस्याओं से निवृत्ति पा सके, निवृत्त हो सके। तो ये कैसे होता है? हमारे वृन्दावन आने से पहले एक बहुत अच्छे महात्मा थे, सिद्ध महात्मा थे, उनका नाम वैसे तो ओर कुछ था लेकिन पूज्य रोटी राम बाबा के नाम से उनको लोग जानते थे। तो जंगल में रहते थे। मैं डेढ़ वर्ष उनकी सेवा में रहा वृन्दावन आने से पहले। तो वैसे वो पढ़े-लिखे नहीं थे, जन्मजात विरक्त जैसे थे, बोलते थे "मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहीं हाथ" बोलते थे " हमारी तो यह स्थिति है, कभी हमने पुस्तक और कलम हाथ में लिया ही नहीं।" लेकिन अनुभूति उनकी ऐसी विलक्षण थी, वे बोलते थे, " देखो भई, गीता में भगवान ने चार श्लोक बतायें हैं समस्याओं से निवृत्ति के कहो या भगवत् प्राप्ति के कहो या आत्मसाक्षात्कार के कहो, ये शब्द अलग-अलग हैं- आत्मानुसन्धान, आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर दर्शन या समस्याओं की निवृत्ति - ये शब्द तो अलग-अलग हैं कहने के लिए प्रस्थान भेद से, लेकिन ये सभी यदि वास्तव में देखा जाए तो तीनों एक कालावच्छेदेन ही प्राप्त होते हैं। ईश्वर साक्षात्कार होगा तो आत्मानुभूति हो जाएगी, समस्याओं से निवृत्ति हो जाएगी। तो तत्वानुभूति होगी तो ईश्वर साक्षात्कार के रूप में होगी, समस्याओं से निवृत्ति हो जाएगी। कहते थे कि "भई, चार श्लोक हैं गीता में, वो बारहवें अध्याय के चार श्लोक बोलते थे, भगवान ने जो चार श्लोक क्रम से बताये -

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः
(गीता० १२.८)

वो कहते थे भई, सबसे उत्तम अधिकारी के लिए तो ये सुन्दर उपाय है, भगवान कहते हैं - मुझमें ही अपना मन लगाओ और मुझमें ही अपनी बुद्धि लगाओ। ये स्थिति जब प्राप्त हो जायेगी तो उसके बाद 'निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं, अत ऊर्ध्वं' माने इस स्थिति के बाद तुम्हारा निवास मेरे रूप में ही होगा, इसमें कोई संशय नहीं। तब मय्येव का भगवान शंकराचार्य तो अर्थ करते हैं - मयि विश्वरूपे, विश्वरूप में माने विराटरूप में अपने मन और बुद्धि को लगाओ। भागवत् की भी यही परम्परा है। भागवत में बताया गया है कि जब तक हम लोग ध्यान करते हैं ठाकुरजी का, श्रीराम का, श्रीकृष्ण का, भगवान शंकर का, और प्रायः शिकायत होती है कि मन नहीं लगता। वैसे मन भले काम में लगा रहे लेकिन ध्यान करेंगे तो चारों तरफ जाएगा। तो भागवत् के दूसरे स्कन्ध में प्रश्न उठाया गया कि मन जाता कहाँ है? दो ही जगह जाता है- या तो रागास्पद् के पास जायेगा और या द्वेषास्पद् के पास जायेगा। सीधी भाषा में समझें - या तो दोस्त के पास जायेगा या दुश्मन के पास जायेगा। दो ही का चिन्तन होता है, बीच वालों का कोई चिन्तन नहीं होता। तो विराट रूप का, विश्वरूप का जो ध्यान बताया गया, उसका वहाँ अभिप्राय है कि विराट रूप में जब भगवान दिखने लगेंगे, जिसमें सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें धर्म को बताया गया भगवान का वक्षस्थल और अधर्म को बताया गया भगवान की पीठ, तो सज्जन व्यक्ति को देखकर ये ध्यान आ जाए कि भगवान का हृदय है और दुष्ट व्यक्ति को देखकर ये ध्यान आ जाए कि भगवान की पीठ है तो सज्जन और दुष्ट तो दोनों गायब हो जायेंगे, दोनों स्थिति में भगवान दिखने लगेंगे। उसका परिणाम क्या होगा? राग द्वेष की जीवन से, आत्यन्तिक निवृत्ति तो नहीं होगी, आत्यन्तिक निवृत्ति तो होगी आत्मसाक्षात्कार समकाल जब दूसरा रहेगा ही नहीं, लेकिन राग द्वेष शिथिल हो जाएंगे, और राग द्वेष जब शिथिल हो जाएंगे तो भगवान में ठीक-ठीक हमारा मन लगने लगेगा। दुनिया में ना कोई दोस्त रहा जिससे कोई विशेष रुचि हो, ना कोई दुश्मन रहा, अपने स्थान में बैठे साधन भजन कर रहे हैं, उसका मन मस्ती से भगवान में लगेगा। तो विश्वरूपे, विराटरूपे। कहते हैं भई, अपने मन को मुझ विश्वरूप में लगा दो और विश्वरूप माने जितना दृश्य प्रपंच दिख रहा है, वहाँ पर बताया गया है कि ये जो पहाड़ है, ये भगवान विराट की हड्डियाँ हैं, ये जो वृक्ष हैं, भगवान विराट के रोम हैं, ये जो नदियाँ हैं, भगवान विराट की नसें हैं। तो ये जितना दृश्य प्रपंच हैं, जब भगवान का रूप दिखने लगेगा तो फिर हम भगवान से बाहर कहीं रह पाएंगे? नहीं रह पाएंगे। तो बस क्या होगा? तो कहते हैं, लेकिन अब वो वेदान्त प्रस्थान से जब उसकी व्याख्या करेंगे तो हमारे श्रीमहाराजजी लिखते हैं कि 'मय्येव मन आधत्स्व' - ये बार-बार जो मयि कहा जा रहा है, तो कहते हैं वो मयि यदि हमारी आत्मा से कोई अतिरिक्त होगा तो महाराजश्री जी कहते हैं कि ठीक है भाई, जबतक आप जाग्रत हैं, उस मयि का अर्थ विश्वरूप लें या कोई इष्ट लें या विराट रूप लें, तो महाराजश्रीजी कहते हैं कि भगवान कहते हैं कि हमेशा उस मयि में मन और बुद्धि लगाओ। तो वो जो मयि है, माने मुझमें है, वो यदि अपनी आत्मा से अतिरिक्त होगा, तो ठीक है, आपकी यदि साधना बहुत अच्छी है, अब देखिए वही प्रसंग आ जाता है, ठीक है, मान लिया कि राग द्वेष शिथिल हो गए जीवन के, जहाँ भी देखते हैं भगवान की स्मृति रहती है, भगवान में मन लगा रहता है, बुद्धि लगी रहती है। लेकिन महाराजश्रीजी कहते हैं कि जब सो जाएंगे तब? तब क्या होगा? तब वो बुद्धि कहाँ जाएगी? विश्ववरूप में जाएगी कि विराट में जाएगी कि अपनी आत्मा में आकर लीन होगी? कहाँ जाएगी? तो कहते हैं कि सोते समय वो अर्थ नहीं चल सकता है कि चौबीस घंटा आप मुझमें मन और बुद्धि को लगाओ। हमारे श्रीमहाराजजी कहते हैं कि जो बुद्धि है ना, वो एक पतिव्रता स्त्री है, दिन में कार्यकरने के लिए कहीं भी रहे

लेकिन रात्रि के समय वो अपने पति आत्मा को छोड़कर के कहीं नहीं रह सकती, उसको लौटना ही है वहाँ, लौट के आयेगी ही वहाँ। तो अभिप्राय क्या है? मयि का जो स्वभाविक यथार्थ अर्थ है वो तो है कि अपनी आत्मा के रूप में, आत्मा को परिछिन्न मान करके नहीं, पहले परिछिन्न के रूप में तो जीवात्मा है, आत्मा को ही अपने सर्वरूप में अनुभव करते हुए मन बुद्धि जब उसमें रहेगा, तो मन बुद्धि की तो केवल प्रतीति मात्र रह जाएगी, फिर उसके अतिरिक्त सत्ता ही कहाँ बचेगी? तो कहते हैं उत्तम उपाय तो यह है - सभी अपनी आत्मा के रूप में अनुभव होने लगें, तो फिर कोई समस्या रहेगी क्या?

एक महात्मा कहते थे, भई! अविद्या की परिभाषा बहुत कुछ है शास्त्रों में। अभी पाताञ्जलियोग सूत्र पढ़ रहे थे। स्वामीजी के साथ आने का यही लाभ है, स्वामीजी का पाठ चल रहा था, मैं भी बैठ जाता था। उसमें भी अविद्या की परिभाषा लिखी हुई है -

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या

कहतें हैं जो अनित्य है, जो दुःख है, जो अपवित्र है, जो अनात्मा है, उसमें नित्य, पवित्र, सुख और आत्मबुद्धि कर लेना ही अविद्या है। तो अविद्या की परिभाषायें तो बहुत हैं, लेकिन एक संत बोलते थे "अविद्या माने क्या? अविद्या माने जीवन की समस्या" कोई भी समस्या है, उसका मूल है अविद्या। अविद्या माने "टेन्शन" अविद्या माने "डिप्रेशन" ये अविद्या का ही सारा कार्य है। तो कहते हैं कि अविद्या की निवृत्ति यदि आत्मरूप में सब दिखाई देने लगे, हमको तनाव किससे होता है? अपने से कि दूसरे से? किससे होता है तनाव? ठीक है आप लोगों को नहीं होता होगा, हमने अनुभव किया है, मत बोलिए आप लोगों को नहीं होता है तो, लेकिन तनाव दूसरे से होगा कि अपने से होगा? हमारे लिए मान लीजिए, दूसरे से होगा कि अपने से? दूसरे से होगा ना? और क्रोध किसके प्रति आता है? अपने प्रति कि दूसरे के प्रति? अपने से बर्तन गिर जाए तो बोल देंगे, सफाई देंगे कि पैर फिसल गया, नीचे गड़बड़ था या ऐसा तो हो ही जाता है, गल्ती तो मनुष्य का स्वभाव है, लेकिन दूसरे से टूट जाए तो? फिर क्षमा नहीं करेंगे। हमारे गुरुजी कहते थे कि जितना क्षमा हम अपने को करते हैं, इतना क्षमा यदि हम सामने वाले को करना सीख जाएं तो बहुत सारी समस्यायें हल हो जाएँ। तो क्रोध आयेगा दूसरे के प्रति, लोभ आयेगा दूसरे के प्रति, अभिमान आयेगा दूसरे के प्रति, तनाव होगा दूसरे से, ईर्ष्या होगी दूसरे से। अभिप्राय क्या हुआ? अपने को कसौटी में भी कसते चलना है। साधक माने क्या? जो दुनिया को नहीं देखता। हमारे श्री महाराजजी कहते थे - संसारी माने क्या? और साधक माने क्या? संसारी वो है जो सामनेवाले का गुण दोष देखता है कि ये ऐसा करता है हमारे साथ, ये ऐसा किया, ऐसा करता है, और साधक माने - जो अपने को देखता है कि ये जो समस्या आयी इसमें मेरा कहाँ दोष है? मैं अपने में क्या सुधार कर सकता हूँ इस समस्या के समाधान के लिए। तो अपने अन्तःकरण का जो निरीक्षण करता है, उसका नाम है साधक। तो अभिप्राय क्या है? यदि भगवान की कृपा से साधन चटुष्टय संपन्न हमारा जीवन है, विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति, मुमुक्षा से युक्त है और वेदान्त श्रवण के समकाल हमको लगता है कि इसमें हमको कुछ उपलब्धि हो रही है तो कसौटी करके देख लीजिए कि अभी सामने वाले से गुस्सा आता है कि नहीं आता है। यदि आत्मदृष्टि हो गयी है तो गुस्सा नहीं आयेगा। क्यों? अपने पर गुस्सा नहीं आता। आत्मदृष्टि माने अपना स्वरूप दीखना। स्वामीजी सुनाते हैं कि हमारे गुरुजी के जो गुरुजी थे ना, पूज्य उड़िया बाबाजी महाराज तो उनको कोई व्यक्ति गाली दे रहा था, तो बाबा को किसी ने कहा कि "आपको गाली दे रहा है", तो बाबा ने कहा "बेटा, मैं ही तो उस रूप में अपने को गाली दे रहा हूँ" यह क्या अनुभव होता है? यदि अविद्या की निवृत्ति हो गई है, यदि आत्मदृष्टि है सच्चाई से, अपनी आत्मा तो सब है, लेकिन अन्तःकरण में क्या है, महत्त्व तो अनुभव का है ना। आत्मा तो चींटी भी है, आत्मा तो हाथी

भी है, आत्मा तो वृक्ष भी है, क्या वृक्ष आत्मा से अतिरिक्त है? तो क्या उसी तरह का यदि हमारा आत्मा रहा तो हमारे ज्ञान में और वृक्ष में अंतर ही क्या रह गया? अन्तःकरण में हमको अनुभव क्या हो रहा है? आत्मा तो सब है।

एक ठाकुर आये थे हमारे रोटीराम बाबा के पास पीला कपड़ा पहने हुए, तो बाबा को थोड़ा विनोद सूझा तो बोलते हैं " ठाकुर क्या रंग बदल रहा है, क्या सन्यास लेने का मन हो रहा है?" तो बड़ी-बड़ी मूँछ रखते थे, गाँव के क्षत्रिय थे, राजघराने के, तो उनहोंने कहा कि "बाबा, यदि मुझको यह अनुभव हो जाए कि मैं ही आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ तो मैं आज ही सन्यास ले लूँ।" तब देखिए अनुभवी महापुरुषों का क्या जवाब होता है, शास्त्र में उसका मूल रहता है लेकिन जिन शब्दों में सन्त बोलेगा वो शब्द शास्त्र में नहीं मिलेगा, वो शैली शास्त्र में नहीं मिलेगी। इसलिए शास्त्र को बताया गया है समुद्र और संत को बताया गया है बादल। पानी उसी का है लेकिन मीठा कब बनेगा? जब बादल उसको लेकरके आयेगा। सीधे आप समुद्र से, बम्बई में तो कितना समुद्र है, लेकिन वर्षा नहीं हो तो आदेश हो जाता है "खाली करो यहाँ से"। क्यों? पानी तो है लेकिन जबतक बादल उसको लेकरके नहीं बरसेगा वो आपके काम में नहीं आयेगा। शास्त्र बहुत है, हमारे श्रीमहाराजजी कहते थे "आप यदि ये सोचें कि हम ब्रह्मसूत्र पढ़कर के ब्रह्मसूत्र के पन्नों से ब्रह्म निकाल लेंगे, वो होनेवाला नहीं है।" हाँ, वो बोलते थे कि "वो तो कोई जब सद्गुरु मिलेगा वो आपको निकाल कर के देगा कि ये है ब्रह्म, ये है तत्त्व।" तो केवल लिपि से या पुस्तक से कुछ नहीं होता। तो महात्मा ने ऐसी अनुभव की बात बोली, जब ठाकुर ने कहा कि "मुझको यदि अनुभव हो जाए कि मैं ब्रह्म हूँ तो मैं सन्यास ले लूँ", तो बाबा ने कहा कि "जिस समय तुमको यह अनुभव नहीं हो रहा, उस समय भी तुम ब्रह्म ही हो।" जिस समय नहीं अनुभव हो रहा, बस, अभिप्राय क्या निकला? ब्रह्म होना नहीं है, जो ब्रह्म होगा वो तो एकदिन बिगड़ जायेगा, ये भी पक्की बात है जो ब्रह्म बनेगा वो एक दिन बिगड़ेगा। तो ब्रह्म बनना नहीं है, ब्रह्म न होने की जो भ्रांति है, उस भ्रांति का निराकरण होना है, उस भ्रांति को निकालना है। तो अभिप्राय क्या है? अपने प्रसंग पर आ जाएँ।

पहले श्लोक में भगवान कहते हैं कि यदि उत्तम अधिकारी है तो अपने मन बुद्धि को अपनी आत्मा के रूप में लगाकर के वो जीवन की समस्याओं से हमेशा - हमेशा के लिए आत्यान्तिक निवृत्ति पा सकता है। तो अब क्या होता है? होता है तो बहुत अच्छा है वो कृतोपास्ति (उपासना किया हुआ है पहले) है, साधन चतुष्ट्य संपन्न है। जिसको वेदान्त श्रवण से, मनन से, निरिर्ध्यासन से ये अनुभव होने लगता है उसका जीवन धन्य है। लेकिन यदि नहीं होता तो उसपर विचार करना चाहिए क्यों नहीं होता है? बीस-बीस साल से वेदान्त सुन रहे हैं, बीस-बीस वर्ष से उसका अनुसंधान कर रहे हैं लेकिन, केवल आप लोगों के ऊपर आक्षेप नहीं है वक्ताओं के ऊपर भी है। सभा में बोलेंगे कि सब आत्मा है, सब ब्रह्म है और मंच से उतरने के बाद एक श्रोता गाली दे दें तो ब्रह्म अनुभव होगा कि नहीं होगा? अगर वह भी ब्रह्म अनुभव होता है तो सोचो कि ठीक है, नहीं तो "माईक" पर बोल देना और सारा व्याख्यान दे देना, व्याख्यान भी एक कला है, ये भी आप ध्यान रखियेगा। तो इसलिए क्या वो हमको अनुभव हो रहा है? उसकी मस्ती भी जीवन की कुछ अलग होती है जिसके जीवन में ये अनुभव हो जाता है। आप सोचें जिसके जीवन में दुनिया से वैराग्य- जो वैराग्य का लक्षण किया गया, ऐहलौकिक और पारलौकिक भोगों से वैराग्य, अधिकारी के उसमें वर्णित हैं - तो आप सोचें कि उसका जीवन कितना मस्त होगा। साधन चतुष्ट्य संपन्न की स्थिति में ही वो कितना निश्चिन्त हो गया होगा, ना तो इस लोक के किसी पदार्थ की उसकी इच्छा है और ना स्वर्ग की इच्छा है, वो व्यक्ति का जीवन आप सोच सकते हैं कैसा होगा? लिखा है वहाँ वैराग्य का लक्षण। तो क्या ऐसा जीवन है हमारा? यदि है तो बहुत बढ़िया है, ये करोड़ों में होता है

किसी का। मनुष्याणां सहश्रेशु - लिखा है गीता में। नहीं है तो क्यों नहीं हो रहा है? इतने दिन वेदान्त श्रवण किया।

एक दिन अभी पूज्य दिव्यानन्दजी महाराज से हमलोग पढ़ते थे तो वहाँ से वो प्रसंग का स्मरण आ गया, उन्होंने श्लोक का स्मरण दिलाया, चतुःश्लोकि जो भागवत है ना, तो पहले श्लोक में ब्रह्म का निरूपण, दूसरे में माया का निरूपण, तीसरे में जगत का निरूपण और चौथे में जीव का निरूपण। लेकिन उस चतुःश्लोकि भागवत के पहले के जो दो श्लोक है - सात श्लोक है कुल मिलाकर के, आपलोग यदि देखें होंगे तो पता होगा और स्वामीजी महाराज तो जानते ही हैं, सात श्लोक है जो भगवान ने ब्रह्माजी को उपदेश किया है - चतुःश्लोकि भागवत् के पहले दो श्लोक और चतुःश्लोकि भागवत्, छः, और एक चतुःश्लोकि भागवत के समापन में एक श्लोक, सातवाँ, सात श्लोक हैं कुल मिला के। तो उसका पहला जो श्लोक है चतुःश्लोकि भागवत सुनाने के पहले, भगवान जो सृष्टि के सबसे पहले रचइता ब्रह्माजी को जो बोलते हैं, क्या बोलते हैं? कहते हैं जो परम गुह्यं ज्ञान है ना, परम गुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्, ये जो मैं तुमको ज्ञान सुनाने जा रहा हूँ ना, ये केवल जमानी जमा खर्च नहीं है, केवल प्रवचन नहीं है, विज्ञान, विज्ञान माने अनुभव,

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम् सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया
(भा० २.९.३०)

कहते हैं "जो मैं तत्त्व ज्ञान का उपदेश, क्योंकि ब्रह्माजी की समस्या भी वही थी जो समस्याएँ हमारी है, ब्रह्माजी ने जब तपस्या की तो भगवान से प्रार्थना की "महाराज, आप हमको संसार की सृष्टि के कार्य में लगाने जा रहे हैं, तो कार्य बहुत बड़ा है। हम लोगों के पास तो दस 'फैक्ट्रियाँ' हो जाए तो भी हम अभिमान में फूल जाते हैं, जमीन से एक हाथ ऊपर हमारा पैर रहता है, ब्रह्माजी के पास तो सारे ब्रह्माण्ड की रचना है तो ब्रह्माजी कितने सावधान हैं, घबड़ाते हैं, ब्रह्माजी कहते हैं "प्रभु! इतने बड़े कार्य में हमको लगाने जा रहे हैं तो सृष्टि करते-करते मुझको सृष्टि कार्य का अभिमान तो नहीं हो जाएगा कि मैं इतना बड़ा सृष्टिकर्ता? तो आप ये सारी सृष्टि, पालन और प्रलय करते हुए और बिल्कुल इससे पद्मपत्रमिवाम्भसा निर्लिप्त रहते हैं, वो कौन सी विद्या है? वो विद्या हमको भी बता दीजिए।" संसार में जाने से पहले, कितनी बढ़िया बात है, हमारी जो गुरुकुल प्रणाली थी ना, पहले ये ही तो होता था, गृहस्थाश्रम में जाने के पहले ये सारा तैयार करके भेजा जाता था जैसे ब्रह्माजी तैयार हो रहे हैं। सृष्टि के पहले पूछते हैं 'हमको विद्या दे दीजिए जिससे मैं संसार की रचना करते हुए भी संसार के मोह में, संसार के अभिमान में नहीं पड़ूँ, वो विद्या दे दीजिए।" तो अब कई लोगों का तो ये सोचना होता है कि जो ज्ञान वैरागय है ना, ये तो महात्माओं के लिए है, गृहस्थों के लिए क्या है? गृहस्थ लोग इसमें क्या करेंगे? कई लोग तो ऐसे होते हैं, यहाँ भले नहीं होंगे। हमारे गुरुजी एक जगह प्रवचन करते थे तो एक जगह एक गृहस्थ के घर में प्रवचन हो रहा था, तो वो व्यक्ति बोलता है कि "महाराज, आप हमारे घर में प्रवचन कर रहे हैं, इस बात का भी ध्यान रखना है" बोले - "मतलब?" तो कहा कि " आप इतनी अधिक ज्ञान वैरागय की बातें हमारे घर के प्रवचन में मत सुनाया करिए।" तो महाराज ने कहा " क्यों? ऐसा क्यों कहते हो?" तो बोलते हैं कि "इसमें हमारे घर के सब परिवार के सदस्य बैठते हैं, बच्चे भी बैठते हैं, बेटियाँ भी बैठतीं हैं, बहुएँ भी बैठतीं हैं, आप इतनी बढ़िया कथा और इतना ज्ञान वैराग्य के आनन्द का - व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है आनन्द के लिए, और वो मस्ती का प्रवचन जब हमारे गुरुजी का होता था, लोगों को देख के लगता था कि "इस जीवन का रहस्य क्या है? हमारा भी यदि ऐसा जीवन हो जाए तो कितना आनन्द रहे।" तो बोलते थे कि "आपका प्रवचन सुन के, ज्ञान वैराग्य सुनके कहीं हमारे

बच्चों को कुछ हो गया?'' अब आप समझ गए होंगे क्या हो गया? कुछ हो गया माने कहीं इनको ज्ञान वैरागय हो गया तो हमारा घर बिगड़ जाएगा। तो महाराजजी ने पूछा कि ''तुम लोग तो इतने दिन से सुन रहे हो प्रेमपुरी में आकर के तो तुम लोगों को तो कुछ नहीं हो रहा है।'' तो बोले - ''महाराज, हम लोग समझ कर सुनते हैं।''

हमलोग अहमदाबाद गए थे स्वामीजी के साथ, तो वहाँ एक सज्जन, विनोदी थे, अपने घर ले जा रहे थे भोजन के लिए। तो बोलते हैं ''महाराज! हम बच्चों को ''एलाउ'' (Allow) नहीं करते हैं सत्संग में जाने के लिए'', हमने कहा ''क्यों?'', बोले ''वो तो कच्चा घड़ा होता है, कोरा कागज होता है, जैसा सुनेगा वही सच मान लेगा'', तो मैंने कहा ''तुम लोग तो आते हो'' बोले ''महाराज, हम लोग तो चिकने घड़े हैं, आप कितना भी बोलो, हमको तो जो लेना है वही लेंगे, आपको प्रणाम भी कर लेंगे, दक्षिणा भी दे देंगे लेकिन हमारे ऊपर तो असर उतना ही होगा जितना हम चाहेंगे, वो आपके कहने से नहीं होनेवाला है इधर।'' तो अभिप्राय क्या है? लोग सोचते हैं कि ये ज्ञान वैराग्य जो है, बाबाओं के लिए है, महात्माओं के लिए है। अरे! ज्ञान माने क्या? ज्ञान माने ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान या अपनी आत्मा का अनुभव, वैराग्य माने संसार की आसक्ति का कम हो जाना, शिथिल हो जाना। तो यदि संसार की आसक्ति कम होगी तो आपको सुख मिलेगा कि दुख मिलेगा? क्या मिलेगा? सुख मिलेगा न? तो फिर आप कैसे बोलते हैं कि वैराग्य बाबाओं के लिए है? वैराग्य, अरे वो ठीक है, सन्त का तो भूषण है ज्ञान और वैराग्य, लेकिन क्या ज्ञान और वैराग्य जनक में नहीं था? क्या वशिष्ठजी में नहीं था? क्या अम्बरीश में नहीं था? क्या प्रह्लाद में नहीं था? ये महात्मा थे कि गृहस्थ थे? क्या थे? गृहस्थ थे। लेकिन इनके ज्ञान वैराग्य का परिणाम क्या हुआ? गृहस्थाश्रम भी इनका सुन्दर चला और गृहस्थाश्रम के सुख दुख का भी कोई प्रभाव इनके जीवन में नहीं पड़ा। तो ज्ञान वैराग्य क्या केवल बाबाओं के लिए है? नहीं, सब के लिए है। अभिप्राय क्या है? आजाइये प्रसंग पर।

भगवान से जब ब्रह्माजी ने कहा कि ''हमको, वो विद्या कौन सी है कि आप सारा काम करते हुए निश्चिंत रहते हैं, वो दे दीजिए।'' तो कहते हैं ''देखो ब्रह्मा, उस विद्या के लिए पहले थोड़ी भूमिका चाहिए, आधार चाहिए, नहीं तो ठहरेगा नहीं।'' क्या आधार है महाराज?

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्

ये जो वास्तविक तत्त्वज्ञान है, इसका आधार क्या है? पात्र क्या है? तो कहते हैं - सरहस्यं तदङ्गं च

दो बात बताई - सरहस्यं का अर्थ करते हैं भगवान की उपासना और तदङ्गं का अर्थ करते हैं जीवन का सदाचार, धर्म प्रधान जीवन। तो पहली सीढ़ी है जीवन की व्यवहार शुद्धि। धर्म प्रधान जीवन माने हम जानबूझ कर के किसी से बेईमानी तो नहीं करते? हम जानबूझ कर के किसी को सताते तो नहीं? हम जानबूझ कर के किसी को कष्ट तो नहीं देते? हमारे श्रीमहाराजजी, स्वामी सुनाते हैं कि जब किसी को मंत्र की दीक्षा देते थे तो मंत्र की दीक्षा के साथ-साथ, वो तो बता ही देते थे जो साधन भजन होता था लेकिन एक वाक्य जरूर बोलते थे कि ''देखो भई, जीवन में जानबूझ कर के किसी को दुःख मत देना।'' ये जानबूझ कर के ''अंडरलाइन'' है, इसपे ध्यान रखियेगा। आप ये नहीं कर सकते हैं कि आपसे कोई दुःखी नहीं होगा, दोनों में बहुत अंतर है। आप किसी को जानबूझ के दुःख ना दें, ये तो आपके वश में है, लेकिन आपसे कोई दुःखी ना हो ये आपके वश में नहीं है। आप चार घंटा भजन करते हैं तो उसको देख कर के यदि कोई दुखी हो जाता है, या आपका व्यापार बहुत बढ़ जाता है तो कोई दुःखी

हो जाता है, आपके पास क्या इलाज है? कोई इलाज नहीं। तो उस, जो दुःखी हुआ तो कई लोगों को शंका हो जाती है ''महाराज, हमारे कारण वो दुःखी होता है तो हमको कुछ करना चाहिए?'' तो एक महात्मा ने कहा कि '' ये जो दुःख मिलता है ये पाप के कारण मिलता है, तो वो पाप का जो केन्द्र है वो आपके जीवन में नहीं है, उस पाप का केन्द्र उसीके जीवन में है, इसलिए उसका आपको कष्ट नहीं मिलेगा, आपको कुछ नहीं करना।'' अभिप्राय क्या है? जानबूझ कर के किसी को दुःख नहीं देना।

वो एक व्यक्ति था हमारे महाराजजी का, तो उसको पच्चीस हजार का लाभ हुआ व्यापार में। महाराजजी के पास आया तो बड़ा उदास दिखाई दे रहा था। महाराज जी ने कहा कि ''तुमको तो बहुत लाभ हुआ है मैंने सुना है'' तो उन्होंने कहा '' हाँ महाराज, मुझको लाभ तो हुआ है बहुत'', फिर उदास क्यों हो? बोले - ''महाराज, हमारा जो पड़ोसी है, जिससे हमारी बनती नहीं है, उसको पचास हजार का लाभ हो गया।'' अब इस दुःख का क्या समाधान है? कोई समाधान नहीं। ऐसा यदि आपसे कोई दुःखी होता है तो आप उसकी तरफ ज्यादा ध्यान मत दीजिएगा लेकिन अपने जीवन में जानबूझ के किसी को कष्ट मत देना, ये है व्यवहार शुद्धि - पहली सीढ़ी है इस ज्ञान के पात्र की। वो बोलते हैं ना, आप लोग जानते होंगे जो सिंहनी होती है ना, क्या बोलते हैं? सिंहनी बोलते हैं ना? अंग्रेजी, गुजराती हमको कम आती है, हिन्दी और संस्कृत में ठीक है, तो कहते हैं जो सिंहनी का दूध है वो केवल सोने के पात्र में ही रुकता है, दूसरे पात्र में डालेंगे तो छेद कर के नीचे चला जाएगा, तो ये वेदान्त ज्ञान जो है ना, ये सिंहनी का दूध है, ये पात्र जबतक सोने का नहीं होगा आपके पास, तो ये सुन तो लेंगे लेकिन ये निकल जाएगा, रुकेगा नहीं। उसका पात्र यही है, क्या? पहली सीढ़ी व्यवहार शुद्धि और दूसरी सीढ़ी है इष्ट और गुरु की उपासना। इष्ट और गुरु की सेवा नहीं होगी, उपासना नहीं होगी, क्योंकि आगे जो दूसरा श्लोक और कहा ना, चतुःश्लोकी के पहले -

तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्

(भा० २.९.३१)

दो बात तो ये है कि व्यवहार शुद्धि हो, इष्ट और गुरु की उपासना हो, इसके बाद भी वास्तव में अविद्या की निवृत्ति कब होगी? जब गुरु का आशीर्वाद प्राप्त हो जाएगा। ये कहते हैं भगवान - मदनुग्रहात् - मेरे अनुग्रह से तुमको ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाए। तो अभिप्राय क्या है? यदि हमको नहीं हो रहा सुनने के बाद भी, नहीं हो रहा माने क्या? यदि हमारे जीवन की समस्यायें नहीं हट रही, अविद्या निवृत्ति का अर्थ है समस्याओं की निवृत्ति, यदि जीवन की समस्यायें चल रही है बराबर और वेदान्त भी सुना रहे हैं, तो उसका कोई ज्यादा लाभ नहीं हो रहा है। और दुनिया को नहीं सुधारना ये भी ध्यान रखियेगा, वेदान्त और भक्ति का जो प्रस्थान है वो दुनिया को सुधार कर के सुखी नहीं होता वो अपने जीवन को सुधार करके सुखी होता है। सृष्टि को नहीं बदलना, दृष्टि बदल जाएगी, सृष्टि अपने आप ठीक दिखने लगेगी। तो कहते हैं कि हमारा जीवन ठीक हुआ कि नहीं हुआ? यदि नहीं हुआ तो विचार करना पड़ेगा कि हमारे जीवन में कहीं व्यवहार में अशुद्धि तो नहीं है? हमारे जीवन में कहीं इष्ट और गुरु की उपासना का अभाव तो नहीं है? यदि इष्ट, गुरु की उपासना होगी तो उसका मुख्य फल क्या है? संसार से वैराग्य। उपासना एक की हो सकती है, या तो संसार की होगी या इष्ट और गुरु की होगी। इष्ट और गुरु की उपासना से जो वैराग्य प्राप्त होता है वो पुष्ट वैराग्य प्राप्त होता है, और जो पुष्ट वैराग्य जीवन में प्राप्त हो जाएगा तो जो वेदान्त का ज्ञान है वो जीवन में बिल्कुल हस्तामलकवत दिखने लगेगा।

भागवत में कई दृष्टान्त है। आप देखेंगे कि सम्पूर्ण गीता सुनकर के अंत में अर्जुन ने कहा -

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा

(गीता १८.७३)

अविद्या की निवृत्ति हो गयी, स्मृति की प्राप्ति हो गयी, ये अंत में अर्जुन ने कहा अठारहवें अध्याय में। भागवत में सम्पूर्ण ग्यारहवाँ स्कन्ध सुनाने के बाद वही वाक्य उध्दव बोलते हैं जो अर्जुन ने गीता में भगवान से कहा। उध्दवजी बोलते हैं -

विद्रावितो मोहमहान्धकारो

(भा० ११.२९.३७)

प्रभु आपके संदेश से, आपके उपदेश से मेरा अविद्या रूपी महान अंधकार निवृत्त हो गया। लेकिन एक बड़ा क्रांतिकारी दृष्टान्त है भागवत में, जिस अविद्या की निवृत्ति अर्जुन को पूरी गीता सुनाने के बाद हुई, जिस अविद्या की निवृत्ति उध्दव को पूरा ग्यारहवाँ स्कन्ध सुनाने के बाद हुई, उसी अविद्या की निवृत्ति भागवत में दशम स्कन्ध में शायद बयासी अध्याय होगा, उसमें गोपियों को भगवान ने अंत में तत्त्व ज्ञान का उपदेश किया है। तत्त्व ज्ञान तो हमारे जीवन का सिद्धांत है, लेकिन ये कैसे आवे जीवन में? ये प्रक्रिया भी देखनी पड़ेगी। भगवान ने देवकी वसुदेव को अंत में तत्त्व ज्ञान का उपदेश किया, गोपियों को तत्त्व ज्ञान का उपदेश किया, भगवान श्रीराम ने दशरथजी को तत्त्व ज्ञान का उपदेश किया, तो अगर भक्ति और ज्ञान का कोई परहेज होता, तो ये तो बड़े ऊँचे-ऊँचे भक्त थे, नरसी मेहता तत्त्वज्ञान स्वयं बोलते हैं, उनके भजनों में आप देखें ज्ञान की कितनी बाते हैं। तो गोपियों को, मैं कहने जा रहा था कि जो अविद्या की निवृत्ति उध्दव और अर्जुन को इतने बड़े उपदेश के बाद हुई, गोपियों को आप देखेंगे केवल दो श्लोक भगवान ने सुनाये कुरुक्षेत्र में जब भगवान का मिलना हुआ है, और वो भी साधारण से श्लोक -

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः

(भा० १०.८२.४६)

"हे गोपियों, जैसे पंच भौतिक पदार्थों में पंच भूत बाहर भीतर व्यापक होता है, इसी प्रकार से सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच में मैं सम्पूर्ण जगह व्यापक हूँ, मेरा ही ये सारा दृश्य प्रपंच रूप है, मुझको इस सारे जगत् के रूप में और अपने रूप में तुम अनुभव करो।"

केवल इतना ही उपदेश, जितना मैंने कह दिया, आप ने सुन लिया, लेकिन न तो कहनेवाले का उतना काम बना न सुननेवाले का बना लेकिन गोपियों का हो गया। शुकदेवजी महाराज इतना ही, आप उठा के देख लीजिए इतना ही वाक्य है, केवल दो श्लोक है, इतनी ही हिन्दी है जो कि मैं महाराज कई बार कह चुका हूँ, सुननेवाले सुनते हैं। और वहाँ पर कहते हैं "क्या पता कि गोपियों की अविद्या की निवृत्ति हुई कि नहीं हुई?" शुकदेवजी महाराज जैसे विरक्त अवद्यूत महात्मा प्रमाणित करते हैं, अगला श्लोक है -

अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः
तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन्

(भा० १०.८२.४८)

कहते हैं इस अध्यात्म शिक्षा से गोपियों के जीव कोश का ध्वंश हो गया और गोपियाँ श्रीकृष्ण को अपनी आत्मा से अभिन्न अनुभव करने लगी, ये शुकदेवजी महाराज राजा परिक्षित को बोलते हैं। अभिप्राय क्या है? वही उपदेश हम भी कहते हैं, सुनते हैं लेकिन श्रीकृष्ण से अभिन्नता का अनुभव नहीं हुआ, क्यों? वो पात्र नहीं है, गोपियों के जीवन में वो पात्र था। गोपियों जैसा विवेक, गोपियों जैसा वैराग्य, गोपियों जैसी षट् सम्पत्ति और गोपियों जैसी मुमुक्षा, इसका अभिप्राय ये मत ले लीजिएगा कि ये कोई वेदान्त प्रस्थान के विरोध में है, विरोध में नहीं है, वेदान्त प्रस्थान हमारे जीवन में कैसे ठीक-ठीक अनुभव में आवे उसका ये समर्थक है, उसका सहयोगी है।

मीराबाई की जैसी तितिक्षा कहीं मिलेगी? विष सामने आया; श्रीकृष्ण का चरणोदक कहकर भेजा गया, उसने कह दिया "ये श्रीकृष्ण का चरणोदक है, तुम्हारे गिरधर गोपाल का", और मीराबाई उसको पी जाती है लेकिन विष अपना काम कर पाया? नहीं कर पाया। जहर का प्याला राणा ने भेजा, पीवत मीरा हाँसी रे। तितिक्षा के भी दो रूप है, एक सहज तितिक्षा और एक साधन की तितिक्षा। एक तो ये तितिक्षा है कि हमको गुरुजी बताते हैं कि साधक को झगड़ा नहीं करना, कोई गाली दे दे तो सह लेना। तो गाली देता है, खराब तो लगता है लेकिन अब गुरुजी ने बोला है झगड़ा नहीं करना तो नहीं करते, सह लेते हैं। और एक तितिक्षा ये है कि सामनेवाला अपने से भिन्न दिखाई ही नहीं देता, या यदि उपासना पराकाष्ठा की है तो सामने वाला व्यक्ति अपने इष्ट के रूप में ही दिखाई देता है, तो वहाँ सहन नहीं करना पड़ेगा, वो सहज सहन होता है, जोर नहीं लगाना पड़ता। तो कहते हैं भक्ति प्रस्थान के द्वारा यदि वेदान्त श्रवण करके हमारे जीवन की समस्याओं की निवृत्ति हो गयी, अविद्या की निवृत्ति हो गयी, हमारे श्रीमहाराजजी कहते थे "कैसे पता लगे अपने को कि हमारा रास्ता सही चल रहा है कि नहीं चल रहा है?" आप स्वयं अपने हृदय में देख सकते हैं, हम जिस रास्ते पर चल रहे हैं, जो भी सुन रहे हैं, जो भी जप कर रहे हैं, जो भी ध्यान कर रहे हैं, जो भी चिन्तन, मनन, निदिध्यासन कर रहे हैं, यदि वो सबकुछ करते हुए हमारे जीवन की शान्ति बढ़ रही है तो सोचो रास्ता ठीक है और यदि वो सब करते हुए हमारे जीवन की अशांति बढ़ रही है तो देख लेना, रास्ते में कुछ विचार करना है, रास्ते में फिर कुछ सोचना है कहाँ गल्ती हो रही है। क्योंकि जो अध्यात्म का रास्ता है, स्वामीजी कहते हैं कि "अध्यात्म का जो रास्ता है, ये रास्ता तो ऐसा है कि इस रास्ते में चलने पर ही सुख शांति का अनुभव होने लगता है, लक्ष्य मिल जाएगा तब तो कहना ही क्या।" और यदि अध्यात्म के रास्ते पर चलते हुए भी सुख शांति का अनुभव नहीं हो रहा तो विचार करना पड़ेगा, रास्ते में गड़बड़ी नहीं है, हमारे चलने में कोई गड़बड़ी है वो गल्ती है, तो विचार अपने को ही करना पड़ेगा।

सन्त लोग, महात्मा लोग या सद्‌गुरु आपके हृदय को देखकर के बता सकता है, तीन ही लोग आपके हृदय को जानते हैं - ईश्वर, सद्‌गुरु और आप स्वयं। तीन में से कोई भी निर्णय कर सकता है कि हमारे लिए क्या ठीक है। तो ये तो मैंने अपने जीवन में जैसा अनुभव किया गुरुओं की कृपा से, पैंतालिस मिनट का समय पूरा हुआ। क्या? वो तो बहुत समय हो जाएगा।

तो पहला साधन तो ये है कि कैसे, हम माने, उत्तम अधिकारी के लिए तो ये है कि आत्मदृष्टि हमको प्राप्त हो जाए तो समस्या की निवृत्ति हो जाएगी। अब महाराज, ये प्रश्न उठा कि इतना सरल तो नहीं है कि आत्म दृष्टि सबसे हो जाए। एक व्यक्ति आए थे महाराजजी के पास, नहीं, वो एक महात्मा हैं स्वामी सत्यानन्दजी वृन्दावन में, उनके पास आए बोले " महाराज, हम पढ़ते हैं, सुनते हैं कि ये सब मिथ्या

है और सब अपनी आत्मा है, अच्छा तो बहुत लगता है, समझते भी हैं, लेकिन हमको एक समस्या होती है कि जब घर में हम आते हैं और कोई व्यक्ति हमारा सामान उठाके जाने लगता है तो फिर उस समय हम उसको आत्मा माने कि सामान छीन लें उससे? आप क्या सोचेंगे? माने कोई सरल चीज नहीं है, उस विरक्त महापुरुष जिसको आत्मदृष्टि प्राप्त है; उसकी मस्ती आप देख सकते हैं, कल्पना करेंगे तो आनन्द आ जाएगा, अनुभव में तो कहना ही क्या है।

एक महात्मा को मैंने देखा है, तेइस वर्ष से पड़े हुए हैं एक स्थान पे। मैं वहाँ दो घंटा था, उनके दर्शन के लिए गया था। कितने लोग प्रसाद लेकर के उनके ऊपर चढ़ा जाते, मन होता खाते, नहीं तो उनके ऊपर ही पड़ा रहता, लेटे रहते वो। एक व्यक्ति चढ़ा जाता है, बाद में बच्चे उठाके खा जाते हैं। और दूसरी बात मैंने देखी कि कोई व्यक्ति रुपया चढ़ा गया, शायद दो सौ रुपया था, तो चढ़ाने वाले को भी मना नहीं किया और थोड़ी देर बाद वो चढ़ानेवाला चला गया तो एक बच्चा उनके ऊपर चढ़ गया और रुपया लेके भाग गया, उसको भी मना नहीं किया। न चढ़ाने वाले को मना किया, और ना उठाने वाले को मना किया, ये है आत्म दृष्टि। तो ये क्या सहज है? तो प्रश्न उठता है कि ये कहना तो सरल है लेकिन जीवन में सच्चाई से अनुभव हो जाना तो कठिन लगता है। तो बाबा कहते थे '' भाई, फिर दूसरा श्लोक है ''

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय

(गीता १२.९)

कहते हैं यदि ये दृष्टि तुमको कठिन लग रही है, अनुभव में नहीं आ रही, अभ्यास करो, बार-बार अभ्यास करो। अनुभव नहीं हो रहा तो गुरु और शास्त्र पर श्रद्धा करके वैसी दृष्टि की भावना करो कि सब अपनी आत्मा है या सब अपना आराध्य है - राम है, कृष्ण है, शंकर है, जो भी आपका आराध्य है। ऐसी भावना करो, अभ्यास माने दोहराना, बार-बार ऐसी भावना करो, और अभ्यास का एक अर्थ और करते थे बाबा, वो कहते थे कि अभ्यास - ये तो है ही दोहराना, बार-बार उस दृष्टि की भावना करना, दूसरा अर्थ ये है कि ऐसे जो महापुरुष हैं जिनको ये दृष्टि प्राप्त है, उनका जितना अधिक से अधिक मिल सके उनका सानिध्य लाभ करना, उनके साथ में रहना। परिणाम क्या होगा? उनकी दृष्टि को देख-देख करके बार-बार आपका अभ्यास स्वभाविक चलेगा और एक न एक दिन वो दृष्टि आपको प्राप्त हो जाएगी। अभ्यास का एक अर्थ, ये सन्तों की व्याख्या है, वो व्याख्या कहीं टीका में नहीं मिलेगी, अभ्यास का यह अर्थ मैंने कहीं नहीं पढ़ा। कहते थे महाराज, यदि ये भी नहीं हो पा रहा है, सन्त का संग भी उतना नहीं मिल पा रहा है, घर का काम है, ''ड्यूटी'' है, व्यवस्था है और वो चिंतन भी नहीं बन पाता है, ध्यान करते हैं तो महाराज! वो भगवान तो दिखते नहीं, दुनिया दिखने लगती है। तब क्या करें? तो कहते हैं -

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव

(गीता १२.१०)

यदि अभ्यास भी नहीं कर सकते हो तो मत्कर्मपरमो भव - जीवन का प्रत्येक कार्य मेरे लिए करना शुरु कर दो, माने? भागवत में बड़ी सीधी व्याख्या है इसकी दी हुई है। एक वाक्य आप जीवन में लिख लें और उसको लगा दें मत्कर्मपरमो माने कोई भी कार्य करने के पहले आप ये देख लें, विचार कर लें कि ये कार्य हमारे गुरु या इष्ट को कैसा लगेगा? इतना विवेक हर व्यक्ति को है, सब जानते हैं

कि जो कार्य हम कर रहे हैं ये इष्ट या गुरु को अच्छा लगेगा या खराब लगेगा। आपका हृदय यदि गवाही दे दें कि अच्छा लगेगा तो उस काम को करो और यदि हृदय मना कर दे कि गुरुजी को और हमारे आराध्य को अच्छा नहीं लगेगा तो मत करो, यही है मत्कर्मपरमो - मेरी प्रसन्नता के लिए। तो क्या भगवान को बेईमानी करना अच्छा लगेगा? क्या भगवान को गाली देना अच्छा लगेगा? क्या भगवान को किसी को सताना अच्छा लगेगा? कितने दोष छूट जायेंगे एक वाक्य से, ऐसे-ऐसे शास्त्रों में वाक्य हैं, एक वाक्य जीवन में नोट रहे और ध्यान चला जाए कि हम जो करने जा रहे हैं हमारे प्रभु को ये कैसा लगेगा? तो यदि वास्तव में वो प्रभु का अच्छा सेवक है तो एक वाक्य उसका सारा जीवन सुधार देगा, अच्छा लगेगा तो करेगा, नहीं अच्छा लगेगा तो नहीं करेगा।

उसकी प्रसन्नता के लिए भी कार्य नहीं कर सकते हो तो कर्म करो लेकिन फल का परित्याग कर दो, कुछ भी करो लेकिन उसका फल मत चाहो- चौथा उपाय है। हम दुःखी कब होते हैं? आप ध्यान रखियेगा, कई लोग कहते हैं '' महाराज हमने अपने बेटे के लिए इतना काम किया, जीवन लगाया, लेकिन वो बेटा जब हमको गाली देता है तब हमको बहुत खराब लगता है।'' स्वाभाविक है, लेकिन उसमें और यदि विचार करें, कई संत कहते हैं, एक बार पूज्य रामसुखदासजी महाराज भी कह रहे थे बोले कि ''यदि सूक्ष्मता से विचार करें तो जो बेटे ने या मित्र ने जो आपको गाली दी उससे दुःख नहीं हुआ, आप जो अपने बेटे और मित्र से जो कुछ आशा रखे हुए थे उस आशा ने आपको दुःख दिया। यदि आप उससे अपेक्षा नहीं रखे होते कि ये हमारा सम्मान करेगा, ये हमारा सहयोग करेगा और वो नहीं करता तो आपको दुःख नहीं होता। कई बार होता है यात्रा में कुली गाली देकर चला जाता है, ''बड़े आये हैं बड़े आदमी, पाँच रुपया काट लिया, ये किया'', लेकिन उसकी गाली में क्या कष्ट होता है? उतनी गाली बेटा दे दे तो जीवन भर याद रहेगी और कुली की गाली? ट्रेन में बैठे और गायब। क्यों? उससे अपेक्षा नहीं थी हमको कि हमारा सम्मान करेगा। तो सच्चाई क्या है? दुख हमारी आशा हमको देती है, वस्तु, व्यक्ति, स्थान दुःख नहीं देता। हम जब किसी से आशा, अपेक्षा रखते हैं, अपेक्षा कि हमारे साथ ऐसा करेगा, वो नहीं करता तो हमको कष्ट होता है। तो व्यक्ति ने दुःख दिया कि हमारी अपेक्षा ने दुःख दिया? सूक्ष्मता क्या है? अपेक्षा ने दुःख दिया। तो कहते हैं चौथा उपाय है दुःख से बचने का, ठीक है-ईश्वर और शास्त्र और गुरु जो तुमको बताते हैं वो करते चलो लेकिन दुनिया की आशा मत रखो, तुम अपने गुरु और ईश्वर को दृष्टि में रखो, गुरु की आज्ञा है या शास्त्र की विधि है, हमारा कर्तव्य है हमारा ये काम करना, इसलिए कर रहे हैं तो भी दुख से बच जाओगे। और बाबा अपनी भाषा में बोलते थे ''यदि कोई कहे महाराज! ये भी नहीं हो पाता,'' तो बोलते थे कि ''भगवान ने तो चार उपाय बता दिए सुखी होने के, अब ये भी नहीं हो पाता तो जन्मो और मरो, दूसरा कोई क्या करेगा?''

तो इन्हीं वाक्यों के साथ पूज्य स्वामीजी के चरणों में प्रणाम करता हूँ। मुख्य बस वही है कि सन्त हमेशा सब जगह होते हैं, अपनी दृष्टि चाहिए पहचानने की और सन्त मिल जाए, श्रद्धा हो जाए तो शास्त्र का सिद्धान्त है कि सन्त को कभी मत छोड़ना। सन्त आपको भगाना भी चाहे तो भी मत भागना और दुष्ट आपको बुलाना भी चाहे तो मत जाना, ये बाते नोट करके रखना। दुष्ट चाहे भी कि हमसे मित्रता कर ले तो मत करना और सन्त यदि चाहे भी, कभी डांट भी दे, गाली भी दे कि ये भाग जाए छोड़ के तब भी मत भागना तो आपका जीवन एक न एक दिन परामानन्द की अनुभूति कर लेगा। बस गुरुओं की कृपा का अनुभव हो जाए, जीवन में सन्तों की कृपा का अनुभव हो जाए तो जीवन धन्य हो जाता है।

बोलिये सच्चिदानन्द भगवान की जय।